मणिकर्णिका

दृष्टि और विमर्श

(हिन्दी दलित आत्मकथा का विश्लेषण)

आनंद दास

भूमिका

'मणिकर्णिका' यूँ तो तुलसीराम जी की आत्मकथा है किंतु यथार्थ में यह आत्मकथा से आगे भारतीय समाज की एक झाकी है। 'मणिकर्णिका' बनारस का एक श्मशान घाट का नाम है जहाँ प्रतिदिन सैंकड़ों मुर्दे जलाये जाते हैं। उत्तर प्रदेश में गंगा नदी के किनारे बसा बनारस हिन्दू धर्म का एक प्रमुख केंद्र है। हिंदू मान्यता में गंगा एक पवित्र नदी है और उसका विशेष धार्मिक-सांस्कृतिक महत्व है। गंगा के किनारे स्थित होने के कारण बनारस को धार्मिक नगरी के रूप में जाना जाता है। प्रसिद्ध विश्वनाथ मंदिर काशी अर्थात् बनारस में है। में कई शमशान घाट हैं। उनमें अस्सी और मणिकर्णिका प्रसिद्ध हैं। बनारस के आसपास के गाँवों-क़स्बों और शहरों से ही नहीं देश के अन्य भागों से भी बहुत से लोग धार्मिक प्रयोजनों से बनारस जाते हैं। बनारस धार्मिक आस्था का बड़ा केंद्र होने के कारण व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर उसके शव का 'मणिकर्णिका' के शमशान घाट पर दाह-कर्म किया जाता हैं।

बनारस में जहाँ रामानंद और तुलसीदास जैसे ब्राह्मण धर्म के पोषक तथा वर्ण-शुचिता के आग्रही वैष्णव आचार्य और भक्तों की भूमि रही है, वहीं कबीर और रविदास जैसे वर्ण-जाति-व्यवस्था के प्रतिकारक, धार्मिक अंधविश्वास और पाखंड विरोधी तथा समतावादी निर्गुण संतों की कर्म-भूमि भी रही है। रामानंद और तुलसीदास तथा कबीर और रविदास पृथक सामाजिक-सांस्कृतिक धाराओं के प्रतिनिधि हैं। यह द्योतित करता है कि विषमतावादी और समतावादी, रूढ़ और प्रगतिशील विचारों और संस्कृतियों का द्वंद्व और टकराव यहाँ सदियों से रहा है। तुलसीराम पर कबीर और रविदास का गहरा प्रभाव है। अपने इन वैचारिक पुरखों और नायकों से वह वैचारिक चेतना और ऊर्जा ग्रहण करते हैं। इसे उनकी आत्मकथा के दूसरे भाग 'मणिकर्णिका' में देखा जा सकता है।

बनारस को ब्राह्मणवाद का गढ़ माना जाता है। जिनके बारे में कहा जाता है कि वे इतने शुद्धता और शुचितावादी हैं कि पानी को भी धो-धोकर पीते हैं कि कहीं

उसमें भी किसी शूद्र या अंत्यज का स्पर्श न गया हो। धार्मिक शुचिता के नाम पर ब्राह्मण नेतृत्व में सवर्णों द्वारा जितना भेदभाव और अस्पृश्यता अवर्णों और अंत्यजों के साथ की जाती है, वह सभ्य और मानवीय समाज के लिए किसी कलंक से कम नहीं है। किंतु भारतीय समाज की यह विडंबना है कि यहाँ जातिगत ऊँचनीच, भेदभाव और अस्पृश्यता को विशेषता मानकर इसका धर्म की तरह पालन किया जाता है। दलितों को सामाजिक जीवन में हर मोड़, हर कदम पर जातिगत भेदभाव, उपेक्षा और अस्पृश्यता का दंश मिलता है। उनका अनुभव संसार इस प्रकार के अनुभवों से भरा पड़ा है। इसलिए दलित जब भी लिखने बैठता है, चाहे किसी भी भाषा और विधा में लिखे, अपने इन अनुभवों को प्रमुखता के साथ अभिव्यक्त करता है। 'मणिकर्णिका' में भी तुलसीराम के जीवन अनुभव दर्ज हैं।

तुलसीराम जी का किशोर और युवा जीवन बनारस में व्यतीत हुआ है। वहीं रहते हुए उन्होंने शिक्षा प्राप्त की तथा वाम आंदोलन, विचारधारा और राजनीति से जुड़े. यही वह जगह और समय था जिसने तुलसीराम को सामाजिक जीवन के विविध पहलुओं को देखने, जानने और समझने का अवसर मिला। 'मणिकर्णिका' यह बताती है कि किस तरह की विषम परिस्थितियों का सामना करते हुए, कितनी कठिनाइयों से कितने संघर्षों से जूझते हुए गाँव से भागकर आए किशोर तुलसीराम का एक संघर्षशील, बौद्धिक युवक के रूप में विकास हुआ। धर्म, जाति, समुदाय, संस्कृति, राजनीति, परिवारों के बदलते स्वरूप, और सामाजिक-आर्थिक-व्यवस्था किस तरह समाज और सामाजिक संबंधों को प्रभावित करती हैं। समाज के अशिक्षित वर्गों में शिक्षा की तीव्र ललक, निम्न वर्गों में ऊपर उठने की प्रबल आकांक्षा, और जातिवाद का दंश झेलती निम्न जातियों में जाति से मुक्ति की कसमसाहट को इस पुस्तक के माध्यम से महसूस किया जा सकता है। आनंद दास ने अपनी इस शोध पुस्तक *''मणिकर्णिका : दृष्टि और विमर्श (हिन्दी दलित आत्मकथा का विश्लेषण)''* में तुलसीराम जी के जीवन संघर्ष, राजनीतिक संघर्ष और अस्मिता विमर्श का अध्ययन एवं अनुशीलन किया है। मेरा विश्वास है यह पुस्तक 'मणिकर्णिका' के बहाने भारतीय समाज, संस्कृति और राजनीति के यथार्थ तथा सामाजिक जीवन के उन पक्षों को समझने में सहायक होगी जो दलित जीवन के काले अध्याय हैं। लोक जीवन और साहित्य के अध्येयताओं के लिए भी यह एक महत्वपूर्ण पुस्तक है।

-जयप्रकाश कर्दम

प्राक्कथन

साहित्य केवल शब्दों का संसार नहीं होता है; वह मनुष्य के अनुभव, स्मृति, संघर्ष, संवेदना और सामाजिक चेतना का जीवंत दस्तावेज भी होता है। साहित्य के माध्यम से मनुष्य अपने समय को समझता है, अपने समाज की संरचनाओं पर प्रश्न करता है और भविष्य के लिए नई संभावनाओं की कल्पना करता है। विशेष रूप से दलित साहित्य ने हिन्दी साहित्य को अनुभव की ऐसी दृष्टि प्रदान की है, जिसने साहित्य के पारंपरिक केंद्रों और स्थापित मान्यताओं को चुनौती दी है। दलित साहित्य ने उन जीवनानुभवों को अभिव्यक्ति दी है, जिन्हें लंबे समय तक साहित्य और इतिहास की मुख्यधारा में पर्याप्त स्थान नहीं मिला।

मेरी यह पहली पुस्तक का प्रकाशन एक अकादमिक कार्य के साथ-साथ लगभग दस साल के अध्ययन, जिज्ञासा, अनुभव और जीवन संघर्ष का परिणाम है। मेरी यह पहली पुस्तक होने की वजह से इसका भावनात्मक महत्व भी विशेष है। किसी भी पहली रचना के साथ लेखक के भीतर उत्साह और संकोच दोनों उपस्थित रहते हैं। मुझे उत्साह इसलिए है कि करीब दस साल बाद 'मणिकर्णिका' आत्मकथा के विश्लेषण को एक व्यवस्थित रूप में पाठकों तक पहुँचाने का कार्य कर रहा हूँ। और संकोच इसलिए है कि साहित्यिक और आलोचनात्मक संसार में प्रवेश करते ही कई प्रश्न सामने आने लगते हैं। यह विश्लेषण विषय के साथ कितना न्याय कर पाएगी? विश्लेषित बातें पाठकों को कितना लाभ पहुँचाएगी? यह पुस्तक हिन्दी दलित आत्मकथा के अध्ययन में कितना सार्थक योगदान दे पाएगी? इस प्रकार के कई प्रश्न लेखन-यात्रा के दौरान बनी रही है। फिर भी मेरा विश्वास है कि किसी भी अध्ययन की सार्थकता केवल उसके अंतिम निष्कर्ष में नहीं होती है, बल्कि उसके द्वारा उत्पन्न संवाद में होता है। वैसे यह पुस्तक 'मणिकर्णिका' आत्मकथा को पढ़ने और समझने की एक आलोचनात्मक दृष्टि प्रस्तुत करती है। साहित्य की किसी भी महत्त्वपूर्ण कृति के अनेक पाठ संभव होते हैं। प्रत्येक पाठ अपने समय, समाज और

वैचारिक संदर्भ से प्रभावित होता है। इसलिए इस पुस्तक को भी एक संवादात्मक प्रयास के रूप में देखा जाना चाहिए।

साधारण तौर पर किसी भी लेखक की पुस्तक में उनके भीतर आकार ले रहे प्रश्नों, आशंकाओं, विश्वासों और सामाजिक सरोकारों का संवाद होता है। मेरे लिए भी मेरी यह ''मणिकर्णिका : दृष्टि और विमर्श (हिन्दी दलित आत्मकथा का विश्लेषण)'' पुस्तक मेरे लेखन यात्रा का अंजाम है। इस पुस्तक के शीर्षक में 'दृष्टि' और 'विमर्श' दो महत्वपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया गया है। दृष्टि का प्रयोग उस अर्थ में किया गया है जिसमें उस नजरिए को समझा सके, जिससे डॉ. तुलसी राम ने अपनी कथा को लिखा है। और दृष्टि हमें यह भी बताती है कि लेखक ने अपने अनुभवों को कैसे देखा है और उसे समाज के अन्य अनुभवों को अपनी आत्मकथा में कैसे जोड़ा है। विमर्श का तात्पर्य है उस बातचीत और विचार-विमर्श से है; जो दलित आत्मकथाओं के चारों ओर चल रही होती है। वैसे दलित आत्मकथाओं की 'दृष्टि' अनिवार्य रूप से एक मजबूत 'विमर्श' को जन्म देती है- एक ऐसी बहस जो सवाल उठाती है, उद्घाटित करती है और आत्ममंथन के लिए प्रेरित करती है।

प्रस्तुत पुस्तक ''मणिकर्णिका: दृष्टि और विमर्श'' केवल मात्र आत्मकथा की समीक्षा नहीं है। यह कुछ ऐसे मूलभूत वैचारिक प्रश्नों और स्थापनाओं का विश्लेषण करती है जो आज के दौर में दलित विमर्श और आलोचना शास्त्र के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। इस पुस्तक की रचना के पीछे केवल एक साहित्यिक कृति का अध्ययन-विश्लेषण करने की इच्छा नहीं थी। इसके पीछे यह प्रश्न भी सक्रिय था कि दलित आत्मकथा को केवल पीड़ा, अपमान, अभाव और संघर्ष की कथा मानकर सीमित क्यों कर दिया जाता है? क्या दलित आत्मकथा केवल सामाजिक उत्पीड़न का दस्तावेज है, या वह समाज की संरचना, सत्ता की प्रकृति, ज्ञान के वितरण, शिक्षा की भूमिका, सांस्कृतिक वर्चस्व और मनुष्य की अस्मिता पर भी गंभीर प्रश्न उठाती है? ऐसे ही अनेक प्रश्नों ने इस पुस्तक की वैचारिक दिशा निर्धारित की है। इस पुस्तक में आलोचनात्मक दृष्टि या विश्लेषणात्मक पक्ष का अर्थ केवल प्रशंसा या दोष-निर्देशन नहीं है। इस पुस्तक का उद्देश्य 'मणिकर्णिका' आत्मकथा के भीतर उपस्थित अर्थों, अंतर्विरोधों, संभावनाओं और सीमाओं को समझना है। इसलिए मणिकर्णिका के अध्ययन-विश्लेषणात्मक में उसकी सामाजिक उपयोगिता, वैचारिक शक्ति, अनुभव की प्रामाणिकता, भाषा की विशेषता और विमर्शात्मक महत्त्व को ध्यान में रखा गया है। यह प्रयास किया गया है कि विश्लेषण न तो केवल भावुक प्रशंसा बनकर रह जाए और न ही पूर्वनिर्धारित सिद्धांतों का यांत्रिक प्रयोग बनकर रह जाए।